ओ३म्

सन्त-वचन-संग्रह

स्वामी विवेकानन्दजी के सन्त-वचन-संग्रह

(प्रथमपुष्प से साभारगृहीत)

नवम् पुष्प
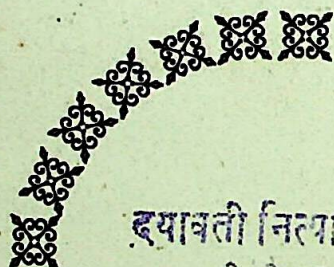
संग्रहकर्त्री एवं प्रकाशिका

दयावती बनाती

1/5 आर्य वानप्रस्थ आश्रम
ज्वालापुर हरिद्वार

प्रथम संस्करण 2000 शिवरात्रिं (1994)

प्रभु प्रार्थना

एक तुम्हारी याद रहे,
और दिल में किसी की याद न हो।
मेरे दिल की सुन्दर नगरी में,
कोई तेरे बिना आबाद न हो ॥

यह मेरी आँखें तेरे ही,
दर्शन की भगवन् प्यासी हैं।
प्रभु आओ देर लगाओ नहीं,
कहीं खानये दिल बरबाद न हो ॥

तेरी याद की मस्ती में रहकर,
सुध भूल के तुझको पा जाऊँ।
तेरा नाम रहे मेरे हृदय में,
बस और किसी की याद न हो ॥
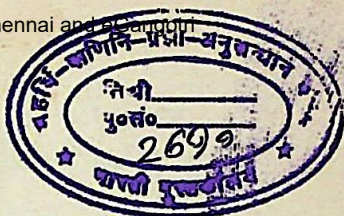
दो शब्द

"परोपकाराय सतां विभूतया"

महान आत्माएं किसी भी स्थिति में क्यों न हों, उनकी विभूति परोपकार करने की ही बनी रहती है। दुःख में सुख में वह जनगण का उपकार ही सोचते और करते हैं। उन्हें अपने दुःख की परवाह नहीं।

ऐसे थे स्वामी विवेकानन्द जी, जो सन् 1930 में आर्यवानप्रस्थ आश्रम के शान्त वातावरण में रहने लगे। प्रतिदिन उनकी कुटिया में प्रभु चर्चा होती थी, उन्होंने अनेक पुस्तकों का सम्पादन किया। मुझे उनकी अनेक पुस्तकों के पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ। जिससे मुझे आध्यात्मिक लाभ प्राप्त हुआ। उन्हीं में से एक पुस्तक है सन्त वचन संग्रह (प्रथम-पुष्प)। मैंने सोचा क्यों न उनके अमूल्य विचारों में से कुछ विचारों का संग्रह करके एक लघु पुस्तिका छपवा दी जाए। मुझे पूर्ण आशा है कि इसके पाठ से आपका मन शान्त और प्रसन्न होगा और प्रभु की ओर आकर्षित होगा।

यदि पाठकों को इस लघुकृति के पठन-मनन एवं चिन्तन से लाभ प्राप्त हुआ, तो मैं अपने अर्थ को सफल हुआ समझूंगी। मेरा यह प्रयास स्वामी जी के चरणों में समर्पित है।

—दयावती बनाती

ईश विनय

भगवन् ! आपने मुझ पर कितनी कृपा की है, इसका मैं वर्णन नहीं कर सकता । जब जिस वस्तु की आवश्यकता मेरे कल्याण के लिये हुई, तभी वह वस्तु कहीं से मुझे आ मिली । आप कल्याणकारिणी माता अपने पुत्रों की एक-एक आवश्यकता को अच्छी प्रकार जानती हुई कृपापूर्वक पूर्ण करती रहती हैं । ओह ! धन्य हो । आपकी करुणा अपार है । आपकी दया का कौन पार पा सकता है ।

प्रभो ! आप ही एकमात्र हमारे रक्षक हैं । अनेक योनियों में दुःख भोगने के बाद अब हम समझे कि आप ही एकमात्र हमारे सहायक हैं । इसलिये और सबका सहारा छोड़कर एक आपका सहारा पकड़ा है । हमारे एकमात्र रक्षक ! आप हमसे एक क्षण के लिये भी दूर मत होइये । यदि क्षण भर के लिये भी हम आपके भूल जाते हैं तो नाना प्रकार की चिन्ताएँ हमें व्याकुल कर देती हैं । इसलिये हमारी यही याचना है, यही विनय है कि आप कभी भी हमारी आँखों से ओझल न हों ।

पिता ! आपकी हमारे ऊपर जितनी महान् कृपा और दया है, जितना आपका उपकार है, उसका बदला हम किसी प्रकार नहीं दे सकगते । हम तो केवल आपको बार-बार नमस्कार ही करते हैं ।

भगवन् ! आप अपने शरणागतों के सब अनर्थों, दुर्गुणों, दुर्व्यसनों को नष्ट करने वाले हैं, इस कारण आप हमारी छिपी हुई वासनाओं का भी, जिनका हमें ज्ञान तक नहीं है, मूल सहित नष्ट कर दीजिये । कृपया ऐसा अनुग्रह कीजिए कि हम इस जन्म में ही आपका साक्षात्कार करके, इन जन्म मरण के दुःखों से छूटकर आपकी आनन्दमयी गोद में आ बैठें ।

ओ३म्

सन्त-वचन-संग्रह

(प्रथम पुष्प)
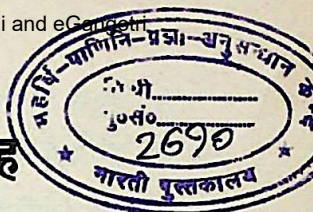
1. ईश्वर साक्षात्कार के लिए तीव्र पिपासा रखिये और महान् धैर्य तथा संलग्नता रखिये ।

2. ईश्वर को कभी न भूलिए, दूसरों की निन्दा न कीजिए, मन तथा इन्द्रियों के आदेश को मत मानिए । कटु शब्द न बोलिए, अधिक भी न बोलिए, एक पल भी व्यर्थ न खोइए ।

3. आपके अन्दर ईश्वर छिपा हुआ है, आपके अन्दर अमर आत्मा है, आपके आनन्द का सागर है । आनन्द की प्राप्ति के लिए अन्दर देखिए । उस आनन्द को आपने व्यर्थ ही इन नश्वर पदार्थों में खोजा है । आनन्द प्राप्त कर अपनी आत्मा में विश्राम कीजिए ।

4. आपके हृदय में अमृत का सागर है । साधना करके उस रस का पान करना चाहिए ।

5. मनुष्य पुरुषार्थ द्वारा सब कुछ कर सकता है । आलसी बनकर ईश्वर को न पुकारिए, उठिए साधना कीजिए । क्योंकि ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जो स्वयं अपनी सहायता करते हैं ।

6. प्रलोभनों, कठिनाइयों का आक्रमण होने पर ईश्वर आपके चारों ओर संरक्षक व्यूह का निर्माण करेगा । भय न कीजिए, वीर बनिए । वीरतापूर्वक आगे बढ़ते जाइए, डरिए नहीं, आप ईश्वर की कृपा से सफल होंगे ।

7. अपनी आवश्यकताओं को जितना भी कम कर सकें उतना ही कम कर देना चाहिए।

8. सभी परिस्थितियों के अनुकूल बन जाइए।

9. कभी भी किसी व्यक्ति या वस्तु में आसक्त न होइए।

10. नपे-तुले मधुर शब्द बोलिए।

11. एक दिन के लिए भी अभ्यास न छोड़िए।

12. जीवन अल्प है, मृत्यु का समय अनिश्चित है। श्रद्धा और प्रेमपूर्वक तीव्रता से साधना में लग जाइए।

13. ऐसी शिकायत मत कीजिए कि समय नहीं मिलता, व्यर्थ बातचीत को कम कीजिए, ब्राह्म मुहूर्त में नियमित उठिए।

14. यदि आप किसी शुभ कार्य को आज ही कर सकते हैं, तो उसे कल के लिए कदापि न छोड़िये।

15. अभिमान न कीजिए, सरल तथा नम्र बनिए, सदा प्रसन्न रहिए, चिन्ताओं को छोड़िए।

16. उन वस्तुओं से उदासीन रहिए, जिनसे आपको कोई तात्पर्य नहीं है।

17. सांसारिक मनुष्यों की संगति तथा बातचीत से दूर रहिए।

18. मन का सन्तुलन सदा बनाए रखिए बोलने से पहले दो बार सोचें, काम करने से पहले तीन बार सोचें। निन्दा चुगली तथा परदोष दर्शन का परित्याग कीजिए।

19. अपने दोषों तथा दुर्बलताओं का पता लगा लीजिए, दूसरों में केवल शुभ ही के दर्शन कीजिए। दूसरों के शुभ गुणों की प्रशंसा कीजिए।

20. दूसरों से आपको जो हानि पहुंची हो उसे भूल जाइए तथा क्षमा कीजिए। जो आपसे घृणा करके उससे प्रेम करें और उसका कुछ भला अवश्य करें।

21. काम, क्रोध, लोभ, मोह तथा अहंकार को विषधर सर्प समझकर त्यागिए।

22. विषयसुख को विष्ठा के समान ही हेय समझिए, उनसे आप कभी तृप्ति नहीं पा सकते।

23. जब बुरी वासनाओं से आक्रान्त हों तो सत्संग तथा जप, प्रार्थना का अवलम्बन कीजिए। शान्ति तथा वीरतापूर्वक बाधाओं का सामना कीजिए।

24. यदि आप ठीक मार्ग पर हैं तो समालोचनाओं की चिन्ता न कीजिए।

25. जब कोई व्यक्ति आपको अपमानित करें, गाली दे तथा व्यंग्य बोले, तो क्रोधावेश में न आइए, यह तो शब्दों का जालमात्र है। अपने मन को ईश्वर में स्थिर बनाए रखिए।

26. जीवन में निश्चित लक्ष्य बना लें, उस पर दृढ़ रहें तथा सावधानीपूर्वक आगे बढ़ते जायें।

27. ईश्वर के अतिरिक्त किसी के साथ भी घना सम्पर्क न बनाइए, अधिक बातचीत न कीजिए।

28. आहार, शरीर तथा सम्बन्धियों का विचार कम कीजिए, आत्मा का विचार तथा ध्यान अधिक कीजिए।

29. मनुष्य में यदि मनुष्यत्व नहीं है, यदि उसमें करुणा, प्रेम, दया, आत्म-संयम, सदाचार, शील तथा सत्संग, प्रभु-भजन, ध्यान, नम्रता आदि गुण नहीं हैं तो वह पशु ही है।

30. तीन वस्तुओं का अभ्यास कीजिए—अहिंसा, सत्य, स्वाध्याय। तीन वस्तुओं का त्याग कीजिए—अहंकार, कामना तथा मोह। तीन वस्तुओं को याद कीजिए—मृत्यु, संसार के दुःख तथा ईश्वर। तीन वस्तुओं का अर्जन कीजिए—नम्रता, निर्भयता तथा प्रेम। तीन वस्तुओं का उन्मूलन कीजिए—काम, क्रोध तथा लोभ।

31. कम लीजिए, अधिक दीजिए। कम बोलिए, अधिक विचार कीजिए। कम खाइए, अधिक पचाइए। कम उपदेश कीजिए, अधिक अभ्यास कीजिए। कम चिन्ता कीजिए, अधिक प्रसन्न रहिए। कम सोइए, अधिक ध्यान कीजिए। लोभ का परित्याग कीजिए, नम्रता का मुकुट पहनिए। सुखी बनिए, ईश्वर में अपनी श्रद्धा को बढ़ाइए, उपासना ध्यान में स्थिर बनिए।

32. आध्यात्मिक मार्ग में निराशा के लिए कोई स्थान नहीं है। उन्नति धीमी हो सकती है, परन्तु सफलता निश्चित है।

33. कल्याण का साधन तुरन्त आरम्भ कर दीजिए, समुद्र के स्नान करने वाले को लहरों से स्तब्ध होने की कदापि प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए।

34. शरीर को अधिक कष्ट कदापि न दीजिये । विषयों की तृष्णा ही बन्धन का कारण बनती है । आवश्यक वस्तुओं का सेवन बन्धन का कारण नहीं है ।

35. जांच की घड़ियों में अपने मन को सदा शान्त बनाए रखिए ।

36. आप स्वयं ही शोक एवं चिन्ता के जगत् का निर्माण करते हैं, कोई व्यक्ति उसे आपके ऊपर नहीं लादता ।

37. जिस प्रकार लोभी मनुष्य धन संचय में बड़ा सावधान रहता है तथा वह एक पैसा भी खर्च करना नहीं चाहता, उसी तरह साधकों को भी चाहिए कि अपने सारे समय को बचाकर ईश्वर की उपासना-ध्यान में लगावें ।

38. प्रत्येक मृत्यु यह याद दिलाती है, हर घंटी कहती है कि अन्त निकट है । हर दिन आपके बहुमूल्य जीवन के एक अंश को समाप्त करता है, अतः सतत साधना में संलग्न हो जाना चाहिए ।

39. किसी भी परिस्थिति में ईश्वर आपको क्यों न रक्खें, यह आपकी उन्नति के लिए ही है । कभी हतोसाह न होइए, बाधाओं की चिन्ता न कीजिए, ये सभी दूर हो जाएंगी । सभी प्रकार के वातावरण में अपने को अनुकूल तथा व्यवस्थित बनाए रखें ।

40. अपने संकल्पों पर दृढ़ रहिए, ज़रा भी न डिगिए, अविचल रहिए। सासंरिक बातों में न पढ़िए। विषयों की बातों से मन विषयमुखी बन जाता है, सदा परमात्मा सम्बन्धी बातें कीजिए । मूल धाम को लौट जाइये, वह मूल परमब्रह्म ही है ।

41. अमृतत्व तथा नित्यानन्द की प्राप्ति कौतूहलपूर्ण साधना से सम्भव नहीं, इसके लिए अनवरत सावधानी तथा प्रबल पुरुषार्थ की आवश्यकता है।

42. साधकों को सब प्रकार के व्यवहार में पूर्णतः सच्चा होना चाहिए। साधक को नम्र, सरल, सहनशील होना चाहिए। अविचल श्रद्धा को, असीम के साथ जोड़ देती है। धैर्य, उत्साह तथा फौलादी दृढ़ संकल्प से युक्त व्यक्ति ही आध्यात्मिक मार्ग में उन्नत हो सकता है।

43. जब तरंगें विलीन हो जाती हैं तब आप झील के नीचे के तल को देख सकते हैं, उसी तरह मन की वृत्तियों के विलीन होने पर भी आप आत्मा को देख सकेंगे।

44. लोहा जब तक आग में रहता है तब तक लाल दहकता रहता है, परन्तु आग से हटा लेने पर वह लाल रंग दूर हो जाता है। उसी प्रकार यदि आप ईश्वरीय आनन्द का स्वाद चखना चाहते हैं तो मन को सदा अन्तर्मुख रखिए।

45. यदि आप व्यर्थ बातचीत तथा अपवाहों का श्रवण करना बन्द कर दें और दूसरों के मामलों में न पड़ें तो आप अनेक बाधाओं से मुक्त बने रहेंगे।

46. कभी-कभी मन उपद्रव करेगा, इन्द्रियां आपके पैरों को घसीटेंगी, छिपी वासनाएं प्रकट होंगी और आपको संतप्त करेंगी। वीर बनिए. अडिग रहिए, इन बाधाओं का धैर्य से सामना कीजिए।

47. बहस करना छोड़िए, मौन रहिए, दिल बहलाने के लिए व्यर्थ बातचीत तथा विचारों में न फंसिए, गंभीर बनिए, ईश्वर के विषय में ही चिन्तन, बातचीत कीजिए।

48. कामना शान्ति की शत्रु है। कामना ही पुनर्जन्म तथा सभी प्रकार के दुःख शोक आदि का कारण है। कामना से ही विभिन्न प्रकार के संकल्प विकल्प उत्पन्न होते हैं। कामना के जाल को विवेक द्वारा काट दीजिए। मन को शुद्ध बनाइए और उसे परमात्मा में जगा दीजिए तथा नित्यानन्द के अमर धाम को प्राप्त कीजिए।

49. आत्म-साक्षात्कार के महान् आदर्श को किसी सांसारिक पदार्थ की प्राप्ति अथवा किसी को प्रसन्न करने के लिए त्याग देना महान् लज्जा की बात है। अपनी आंखें खोलिए, इस जगत् की नश्वरता की नग्नता को देखिए, सब कुछ क्षण-भंगुर है, परमेश्वर को जानकर सदा सुखी रहिए।

50. प्रकृति के विरुद्ध चलकर ही मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर सकता है। जिस तरह मछली धारा के विरुद्ध तैरती है उसी तरह आपको भी सासंरिक प्रवाह के विरुद्ध चलना होगा।

51. जो मनुष्य स्वार्थी और कृपण है, जिसका हृदय उदार नहीं है और भजन, ध्यान सत्संग में जिसकी रुचि नहीं, उसका जीवन व्यर्थ है। यदि मनुष्य में अभिमान, कामना तथा अहंकार का लेश भी रहेगा तो ईश्वर का साक्षात्कार नहीं कर सकता।

52. बिना बादल के वर्षा नहीं, बिना वर्षा के उपज नहीं, इसी प्रकार बिना ईश्वर भजन के सु-व्र आनन्द कहां ?

53. अधिक पुस्तकें पढ़ने से कोई लाभ नहीं, आंखें बन्द कर लीजिए, इन्द्रियों को समेट लीजिए, मन को निस्तरंग बना लीजिए, हृदय में गहरी डुबकी लगाइए, फिर अपरोक्ष ज्ञान होगा और सारे मानसिक सन्ताप दूर हो जाएंगे।

54. हृदय में विभासित परमात्मा में ध्यान के द्वारा विश्वास प्राप्त करके ही आप सुख, आनन्द प्राप्त कर सकेंगे। सांसारिक पदार्थों से जो सुख मिलता है वह सुख नहीं, वह तो विष भरी मिठाई है।

55. आप अजर-अमर आत्मा है। ध्यान के द्वारा निज आत्मा का साक्षात्कार कीजिए। मन आपको ठगता तथा प्रलोभित करता है, इस महान् वैरी मन को वश में कीजिए और इसे मित्र बनाइए।

56. दूसरों ने आपके प्रति जो भूल की हो उसे शीघ्र भूल जाइए तथा क्षमा कर दीजिए।

57. आध्यात्मिक साधक के लिए प्रशंसा तथा सम्मान विष के समान है। अपमान तथा अनादर जिज्ञासु के लिए आभूषण हैं।

58. प्रतिज्ञा करने में ढीला बनिए, परन्तु पालन करने में जल्दी कीजिए।

59. आपको अपनी सम्पूर्ण मानसिक दुर्बलताओं से मुक्त होना चाहिए। भय, चिन्ता, भ्रान्ति से मुक्त बनिए, तभी आप वास्तव में सुखी होंगे।

60. समय का अपव्यय न कीजिए, साधकों के लिए समय बहुमूल्य धन है। एक मिनिट भी व्यर्थ न खोइए। ध्यान कीजिए, साक्षात्कार कीजिए, अमृतरस का पान कीजिए।

61. अपने को छिपाए रखिए। अपनी योग्यता का प्रदर्शन न कीजिए। नाम तथा सम्मान की परवाह न कीजिए। नाम तथा यश को तृण, मल, धूली तथा विष के समान समझिए, तभी आपको शान्ति मिलेगी।

62. संकल्पों को दृढ़ तथा सबल बनाइए। एक बार निवृत्ति मार्ग ग्रहण कर लेने पर घर जाने की बात न सोचिए। मन की स्थिरता, साहस तथा जीवन में निश्चित उद्देश्य बनाए रखिए।

63. साधक को पूरी की पूरी साधना स्वयं ही करनी होगी केवल जादू से तो आत्म-साक्षात्कार होगा नहीं।

64. कष्ट उठाए बिना सफलता सम्भव नहीं, आध्यात्मिक मार्ग में आने वाली प्रत्येक कठिनाई साधक को अधिक सबल बनने के लिए एक सुअवसर होता है।

65. हे जिज्ञासु जनो ! पीछे न देखिए, आगे बढ़ते जाइए। विजयी बनिए, शान्ति का मुकुट पहनिए तथा देश-काल से परे अमर आनन्द को प्राप्त कीजिए।

66. तोड़िये तथा जोड़िये, अर्थात् मन को संसार से तोड़िये तथा ईश्वर से जोड़िये, यही धर्म का और सारी आध्यात्मिक साधनाओं का सारांश है।

67. ईश्वर में अविचल श्रद्धा तथा सद्ग्रन्थों और वेदशास्त्रों में अडिग श्रद्धा बनाए रखिए, तभी आप ईश्वर साक्षात्कार प्राप्त करेंगे। हृदय की शुद्धता ईश्वर प्राप्ति का द्वार है। इन्द्रियों और मन को वश में कीजिए, ध्यान कीजिए तथा उपनिषदों के ज्ञान रस को छककर पान कीजिए। थोड़ा खाइए, थोड़ा सोइए, थोड़ा बोलिए अधिक ध्यान कीजिए तथा ईश्वर का साक्षात्कार कीजिए।

68. उठिए वीर बनिए, प्रसन्न रहिए। ईश्वर पर निर्भर रहिए, अन्दर से शक्ति तथा बल प्राप्त कीजिए।

69. हर कठिनाई ईश्वर में आपकी श्रद्धा की परख के लिए आती है।

70. आपके हृदय की गहराई में अमूल्य आत्ममोती छिपा हुआ है। आत्मा को जान कर सुखी हो जाइये। गम्भीर ध्यान के द्वारा हृदय के प्रकोष्ठ में गोता लगाकर इस मोती को प्राप्त कर लीजिये।

71. अहंकार को कुचल डालिये, अज्ञान के पर्दे को फाड़ डालिए, मन पर काबू पा लीजिए, इसे एकाग्र कर लीजिए तब प्रभु का साक्षात्कार कीजिये।

72. विद्वता एक वस्तु है तथा साक्षात्कार दूसरी वस्तु है।

73. मन वचन तथा कर्म में शुद्ध होना, सन्तुष्ट तथा प्रसन्न रहना मोह रहित होना, सदा ईश्वर को याद करना ही साधना का सारांश है। साधना में बहाना करके किसी प्रकार का कारण खोज कर छुट्टी पाने से लाभ न होगा।

74. सांसारिक बातें आध्यात्मिक उन्नति में बड़ी बाधक है।

75. पेटू बातूनी, इन्द्रियपरायण, आलसी तथा हठी व्यक्ति ब्रह्मज्ञान को प्राप्त नहीं कर सकता।

76. धीर बनें, उत्साही बनें, जितनी शक्ति हो करें, शेष को ईश्वर के अर्पित कर दें, उसी पर अवलम्बित रहें, वह आपकी रक्षा करेगा।

77. किसी वस्तु से किसी कारण से भी भय न कीजिए, आप अजर-अमर आत्मा है, शान्ति बनाये रखिये।

78. उठो, जागो और अधिक न सोओ, भय का त्याग करो, कामनाओं का परित्याग करो, एक मिनट भी व्यर्थ न खोओ, ईश्वर पर निर्भर रहो।

79. आत्म-समर्पण तथा प्रभु-प्रेम पदत्राण हैं जिन्हे पहन कर साधक आध्यात्मिक मार्ग के कंटकों तथा बाधाओं से बच जाता है।

80. इन्द्रियों के दमन, राग-द्वेष के शमन, सभी प्राणियों के लिए करूणा तथा ध्यान-अभ्यास के द्वारा हम प्रभु को प्राप्त कर सकते हैं।

81. स्वार्थ, अभिमान तथा दम्भ ये आध्यात्मिक मार्ग के महान कंटक हैं।

82. तुम्हें केवल इच्छाओं के जाल की, जो कि तुम्हे फंसाये हुए है, तोड़ डालना है। तुमने जो कुछ किया है उसे मिटाना है। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि ईश्वर-प्राप्ति के लिए तुम्हें कुछ भी नहीं करना है, अपना जेलखाना बनाने के लिए तुमने जो कुछ किया है केवल उसे मिटा दो, फिर तुम्हें ईश्वर का साक्षात्कार होगा।

83. यह बात स्मरण रक्खो कि ज्यों-ज्यों कामनाएं बढ़ जाती हैं त्यों-त्यों मनुष्य तुच्छ होता जाता है।

84. अरे मनुष्य ! तू ईश्वर का पुत्र है केवल शरीर के केन्द्र में रहना छोड़ दे। जब चर्म (शरीर) दृष्टि छूट जायेगी, तब ईश्वर दृष्टि अपने आप हो जायेगी।

85. जो ईश्वर से प्रेम करते हैं, उसका भजन, ध्यान करते हैं, वे ही जीवित हैं बाकी सब मुर्दे जैसे ही हैं।

86. मुंह बन्द कर और अपने प्यारे के नाम के सिवा कुछ मत बोल।

87. एकमात्र अपराध है ईश्वर को भूल जाना।

88. मृत्यु यह नहीं पूछती कि तुम्हारे पास क्या है किन्तु यह कि तुम हो क्या ? जीवन का प्रश्न यह नहीं कि मेरे पास क्या है किन्तु यह कि मैं क्या हूं।

89. निराशा बड़ी भारी दुर्बलता है इससे बचो।

90. आप लोगों को अपनी बातचीत में कभी किसी व्यक्ति विशेष की चर्चा नहीं करनी चाहिए।

91. मनुष्य का जन्म इसलिए नहीं हुआ कि जरा जरा सी बात से डरे और चिन्ता में डूबा रहे, मेरा क्या बनेगा, यह बात कैसे होगी, वह कैसे पूरी होगी। उसमें कम से कम इतना आत्म सम्मान तो होना चाहिए, जितना कि पक्षियों और वृक्षों में पाया जाता है वे तूफान अथवा धूप आदि के आने पर बड़बड़ाते तो नहीं।

92. वास्तव में वही प्रसन्न है जिसने प्रसन्नता का अनन्त स्रोत अपने भीतर पा लिया है। वह सब अवस्थाओं में निश्चित है।

93. सफल नहीं है, जो डरपोक है। भय मनुष्य का घातक शत्रु है। यह वैरी हमारे स्वास्थ्य को भी बिगाड़ देता है और हमारी सफलता में रूकावट डालता है। उन्नति उस योद्धा के चरण चूमती है जो इस शत्रु पर विजय पाता है। हमें न रोगों से डरना चाहिये और न ही मृत्यु से ,न धन आदि की हानि से।

94. मनुष्यों पर निर्भर रहना व्यर्थ है। देने वाला, रक्षा करने वाला एक भगवान् है।

95. सच्ची शान्ति उसे मिलती है जिसने अपने जीवन की याद भगवान् के सुपुर्द कर दी है।

96. सांसारिक सुख अपने सिर पर दुःख का मुकुट पहने आता है जो मनुष्य उस सुख को अपनायेगा, उसे दुःख को भी अपनाना पड़ेगा।

97. जन्म-मरण से छुटकारा पा लेना ही मानव-जीवन का लक्ष्य है। जिसने इस जीवन में अपने परम लक्ष्य को प्राप्त कर लिया है उसी का जीवन सार्थक है नहीं तो इस जीवन का क्या लाभ ?

98. जो अपनी परिस्थिति की चादर में हाथ-पैर सिकोड़ कर सोना नहीं जानते, वे ही काम, क्रोध आदि के मच्छरों से सताये जाते है, हर समय दुःखी बने रहते हैं, स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है, छोटी चादर और देह बड़ी। इसलिए अपनी छोटी चादर में सिमट कर सोना सीखो। यदि सुखी रहना चाहते हो तो अपने को समेटना सीखो, अपनी आवश्यकताओं को कम करो, चादर कभी भी पूरी अर्थात् बड़ी नहीं होने की।

99. तुम्हे कोई भला या बुरा शब्द कह देता है, तो तुम इतने भड़क क्यों उठते हो ? यह शब्द क्या है ? आकाश के गुण हैं। तुम इनसे प्रभावित न होओ तो यह आकाश में लीन हो जायेंगे, तुम स्वयं इन्हें अपना लेते व अपने पर लगा लेते हो, तभी तुम में भड़क उठने की भावना जाग पड़ती है।

100. साधक की कोई भी साधना सफल नहीं हो सकती जब तक वह साधना में सावधान न रहे। आध्यात्मिक साधना तो निश्चत समय पर की जाती है परन्तु सावधानी चौबीसों घंटे, हर क्षण रखनी चाहिये।

101. माता कभी भी अपनी सन्तान को दुःखी देखना नहीं चाहती, वह बच्चे को दूध पिलाती हैं, अच्छे अच्छे भोजन खिलाती हैं, सुन्दर सुन्दर वस्त्र पहनाती है, चूमती हैं, प्यार करती हैं, बच्चा रोगी हो जाय तो मिठाई उसके हाथ से छीन लेती हैं और कड़वी दवाई नहीं पीना चाहता, तब चपत भी लगा देती हैं।

जब भक्त ने परमात्मा को अपनी मां स्वीकार कर लिया, तो फिर उसकी दृष्टि में उस भक्त पर कोई कष्ट आता है तो भक्त को यही विश्वास होना चाहिये कि उसका कल्याण इसी में था वह रोये क्यों, वह हाहाकार क्यों करें, उसके अन्दर से तो यह ध्वनि निकलनी चाहिये, कि—

राजी हैं हम उसी में, जिसमे तेरी रज़ा है।
यहां यूं भी वाहवाह है और वूं भी वाहवाह है॥

102. जितनी आवश्यकताएं और इच्छाएं कम करोगे, उतने ही अधिक प्रभु के निकट होते जाओगे।

103. जबान का स्वाद जब भक्त को घेर लेता है तब भक्ति रोने लगती है। भक्त भगवान् से दूर हो जाता है।

104. जब तक संसार हमारे मन में बसा हुआ है तब तक भगवान् दूर प्रतीत होते हैं जैसे ही संसार हटा, तो मन में प्रभु का प्रकाश और आनन्द आया।

बुल्ला शाह ने एक बार प्याज की पनीरी लगाते हुए कहा था—

बुल्ला रब दा की पावना।
एधरों पुट्टना ओधर लावना॥

105. भक्ति मार्ग में दयावान भगवान् अपने भक्त की उसी प्रकार रक्षा करते हैं जैसे स्नेहमयी माता अपने अबोध शिशु की।

106. जो अपने को प्रभु की चरणों में छोड़ चुका, वह जब कहीं फिसलने लगता है तब दयामय भगवान् हाथ पकड़कर उसे वहां से निकाल लेते हैं।

107. दूसरों की भूल पर बुरा मानने, का अधिकार उसी को हो सकता है जिससे जीवन में कभी भूल न हुई हो, न होती हो।

108. जो साधक अपना भला चाहता है वह दूसरों की बुराई न देखें, अपनी बुराई को हजार आंखों से देखें, बड़ी सावधानी से देखें, कहीं छिपी न रह जाय। और जो बुराई दिखाई दें, उसे तुरन्त बड़े प्रयत्न से निकाले, जैसे सर्प को घर से तुरन्त निकाल देना चाहते हैं।

109. अपने को संभालने का समय है दूसरों के साथ माथा-पच्ची करने का नहीं।

110. जो मनुष्य वैराग्य रसिक नहीं बना, वह प्रभु राग रस का पूर्ण रसिया बन ही नहीं सकता।

111. प्रभु की कृपा में किसी कारणविशेष वश किंचित देर भले ही हो जाए, पर उसमें अन्धेर नहीं हो सकता।

112. क्रोध के समान कोई शत्रु नहीं, निन्दा के समान कोई पाप नहीं और मोह के समान कोई मारक वस्तु नहीं, राग के समान कोई बन्धन नहीं और आसक्ति के समान कोई विष नहीं है।

113. किसी की निन्दा करने से अपने सद्गुण नष्ट हो जाते हैं और नरक की प्राप्ति होती हैं।

114. शरीर से ऊपर उठो, समझो और अनुभव करो कि मैं इससे अलग चेतनतत्व हूं, अजर-अमर हूं, इसलिए मुझ पर मनोविकार और सुख-दुःख, हानि-लाभ क्या प्रभाव डाल सकते हैं।

115. हृदय की पवित्रता का अर्थ है अपने आपको सांसारिक पदार्थों की आसक्ति से मुक्त कर लेना।

116. जब कभी मनुष्य किसी सांसारिक वस्तु से दिल लगाता है, जब किसी सांसारिक पदार्थ में सुख ढूंढने का प्रयत्न करता है, तभी उसे धोखा होता है। इन्द्रियां उसे उल्लू बना देती हैं।

117. वाणी और रसनेन्द्रिय को संयत करना अति आवश्यक है।

११८. रोते-रोते आये, ऐसा काम करो कि हँसते-हँसते जाओ ।

११९. शरीर के लिये आहार है, आहार के लिये शरीर नहीं ।

१२०. विश्वास के साथ अपने आपको उनके श्री चरणों में डाल दो, प्रत्येक ईश्वर-इच्छा का नम्रता से स्वीकार करते हुए प्रसन्न रहो, यही शरणागति और समर्पण है ।

१२१. एक को मजबूती से पकड़ लें, तो अनेकों की खुशामद नहीं करनी पड़ती ।

१२२. परमार्थ का मार्ग व्यवहार से होकर ही जाता है, इसलिये व्यवहार को शास्त्रमर्यादा को अनुसार बनाओ व्यवहार अमर्यादित हुआ तो परमार्थ को पता नहीं चलेगा ।

१२३. दूसरे की चर्चा विषवत् छोड़ दो, न स्वयं करो, न कानों से सुनो । पर-चर्चा और बाह्य दृष्टि का सदा के लिये त्यागकरो । दूसरे की बात सोचने से अपना मन मलिन होता है । कमरे की दीवार पर लिख रक्खो "पर चर्चा निषेध, बाह्य-दृष्टि का त्याग ।"

124. हम होठों से असत्य तथा कड़वे वचन न निकालें, कानों से किसी की निन्दा न सुनें, आंखों से मन को विचलित करने वाला दृश्य न देखें । वाणी से सत्य बोलें, ईश्वर का नाम जपें, कानों से सदुपदेश सुनें, जो ऐसा करेगा वही कल्याण मार्ग में आगे बढ़ेगा ।

125. जब तक तुम्हारे मन में संसार घुसा हुआ है तब तक प्रभु तुमसे दूर हैं, संसार की ओर तुम्हारी दौड़ बन्द होने पर ही ईश्वर की ओर तुम्हारी प्रगति होगी, जरूर होगी ।

126. जो सांसारिक पदार्थों में मोह न रखकर अपना सारा बोझ, भार प्रभु पर छोड़कर हल्का हो जाता है, वह सहज ही संसार-सागर से पार हो जाता है।

127. जो ईश्वर को प्राप्त करना चाहें उन्हें दूसरे विषय की चर्चा ही नहीं करनी चाहिए।

128. अपने दोषों को न देखने, न दूर करने का ही नाम धर्मान्धता है। कहनी के अनुसार रहनी न हो, इसी का नाम ठगी है।

129. यदि तुम्हें सच्चा सुख प्राप्त करना है तो तुम अपना भार अपने ऊपर से उतार कर प्रभु के ऊपर डाल दो और निश्चिन्त होकर प्रभु का ही भजन करने वाले बनो।

130. ऐसा काम करो जिससे प्रभु के प्रीतिपात्र बनो, संसार का प्रीतिपात्र बन जाना तो अपने को अधोगति में ही जा गिराना है।

131. कष्ट आ पड़ने पर जो मनुष्य दुःखी होता है वह शास्त्र की दृष्टि से ईश्वर का अविश्वासी समझा जाता है।

132. सन्तोष कड़वा होता है परन्तु उसका फल मीठा होता है।

133. बुद्धिमान् मनुष्य करते अधिक हैं और कहते कम हैं।

134. आनन्द को अन्दर ही खोजना चाहिए। सुख-दुःख देने वाली बाह्य वस्तुओं से आनन्द की आशा नहीं करनी चाहिए।

135. विषयों के साथ खेल खेलना और अछूते रहना यह अनहोनी बात है।

136. जब कोई भक्ति मार्ग में एक बार अपने को ईश्वर को सौंप देता है, तब स्वयं भगवान् ही उसकी निष्ठा की बढ़ाते चले जाते हैं और अन्त में अपने यथार्थ स्वरूप का पूर्ण ज्ञान करा देते हैं।

137. प्रभु की शरण ग्रहण करने वाले भक्त पर परम दयालु, परम सुहृद, सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की दया का स्रोत बहने लगता है जो उसके समस्त दुःखों और बन्धनों को सदा के लिए बहा ले जाता है।

138. सारे संसार की सम्पत्ति मिल जाने पर भी वह एक मनुष्य की ही तृष्णा शान्त करने में समर्थ नहीं है। इसलिए थोड़ा ठहर और सोच कि तेरा वास्तविक अधिकार क्या है? प्यारे मानव! इसमें सन्देह नहीं कि तू स्वभाव से ही पूर्णता की मांग लेकर अवतीर्ण हुआ है। निरतिशय आनन्द ही तेरी एकमात्र पुकार है। सब प्रकार की पूर्णता या अमृतत्व ही तेरा एकमात्र अधिकार है, अपने इस जन्मसिद्ध अधिकार को प्राप्त किए बिना तुझे कभी शान्ति नहीं मिल सकती। परन्तु तू तो न जाने क्या-क्या उपाय शान्ति की प्राप्ति के लिए करता रहता है। आकाश पाताल एक कर रहा है। शान्ति तो तेरी निजि सम्पत्ति है। तूने अशान्ति के कारणों का आश्रय लेकर उल्टा अपने को अशान्त कर लिया है। यदि तुझे अपने वास्तविक साध्य को पाना है, परमात्मा को प्राप्त करना है, तो सब बखेड़ों को छोड़कर उस परमात्मा की ही शरण में चला जा। वे स्वयं ही अपना परिचय कराके तुझे अपना लेंगे।

139. इस देह के रहते हुए क्या कभी यह सम्भव है कि तेरे जीवन में सर्वदा अनुकूलता ही रहे, प्रतिकूलता का दर्शन ही न हो, अतः अनुकूलता के प्रलोभन और प्रतिकूलता के भय को छोड़कर तू प्रभु के संकेत का अनुसरण कर। वही जीवन-पथ में आने वाली सब प्रकार की घाटियों से पार करके तुझे तेरे लक्ष्य पर पहुंचा देंगे।

140. विवेक की प्राप्ति के लिए पहली शर्त यह है कि तुझे दूसरों के नहीं, अपने आचरण पर दृष्टि रखनी होगी, जिसकी दृष्टि पर-दोष-दर्शन में लगी रहती है वह कभी विवेक को प्राप्त नहीं कर सकता। अतः दूसरों के दोष न देखकर अपने ही आचरण पर दृष्टि रख। इसी से तेरी दृष्टि निर्दोष होगी और तू विवेक प्राप्त करने का अधिकारी होगा।

141. मनुष्य का भविष्य वास्तव में इतना महान् है कि जिसकी कोई तुलना नहीं है फिर भी कितने आश्चर्य की बात है कि इसके जीवन का पर्यवसान ऐसा शोकजनक हो। जो मानव परमानन्द को प्राप्त करने का अधिकारी है वही राग-द्वेष उपजने वाले वैषयिक सुख के दल-दल में इस प्रकार लोट पोत करता रहे।

142. असीम अनन्त साम्राज्य का अधिकारी मनुष्य आज एक भिखमंगे की तरह सांसारिक सुखों के दुर्गन्धयुक्त ढेर में से कूड़ा बटोर रहा है। क्या मानव जाति पीछे फिर कर देखेगी, क्या मानव के नेत्रों पर से प्रमाद का यह पर्दा हटेगा, और वह शाश्वत आनन्द के स्रोत की कुछ झलक पायेगा।

143. परम तत्त्व के साक्षात्कार के लिए, परमानन्द की प्राप्ति के लिए, दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति के लिए, जीवन के चरम लक्ष्य तक पहुंचने के लिए तथा जन्म-मरण से सर्वथा एवं सदा के लिए छुटकारा पाने के लिए जिन अंशों की अपेक्षा होती है वे सब मनुष्य में विद्यमान हैं। ऐसा सुअवसर प्राप्त करके भी यदि कोई चरम दुःख की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति के लिए प्रयत्न न करे, तो वह शास्त्र की दृष्टि में आत्म-हत्यारा है।

144. मनुष्य होकर भी जो मनुष्य के उद्देश्य को नहीं समझता और न उसके अनुसार कार्य करता है वह मनुष्य नहीं पशु है।

145. मानव ! तुम दुःखी रहने के लिए नहीं जन्मे, अखिल आनन्द का भण्डार तुम्हारे अन्दर भरा हुआ है। उसको प्राप्त करने का एकमात्र साधन यह मनुष्य देह भी तुम्हें प्राप्त है इस स्वर्ण अवसर से लाभ उठाओ।

146. जैसे मुझसे अज्ञानवश कई प्रकार के अपराध हो जाते हैं वैसे ही दूसरों से भी हो जाते हैं, यह जानकर दूसरों द्वारा जब हमारे प्रति कोई अपराध हो जावे, तब हमें क्षमाशील होना चाहिए। आपे से बाहर होकर सटपटाना नहीं चाहिए। अपने जीवन में संयम और मर्यादा को अधिक से अधिक मात्रा में प्रतिष्ठित करना चाहिए। अपनी आवश्यकताओं का यथासम्भव संकोच करना चाहिए।

147. अपने कार्य अपने हाथ से करने में आत्म-गौरव समझना चाहिए।

148. बीती हुई प्रतिकूल बातों का स्मरण करके शोक करना छोड़ देना चाहिए। आगे आने वाली अनुकूल बातों की पहले से ही आकांक्षा करना अर्थात् मन के लड्डू बनाना छोड़ देना चाहिए।

149. मन के विपरीत किसी घटना के प्राप्त होने पर उसे ईश्वर का विधान मानकर सन्तुष्ट रहना चाहिए।

150. बहुत कम बोलना चाहिए।

कहे एक जब सुन ले दो।
ईश्वर ने जबान एक दी और कान दो।।

151. संसार सदाचार, सेवा, संयम और दया चाहता है, पर भगवान् भक्ति तथा प्रेम चाहते हैं। अत: हमें ऐसा जीवन बनाना चाहिए जो जगत् तथा जगत्पति दोनों के लिए प्रिय हो।

152. मानव जीवन को प्रभु की ओर न लगाकर भोगों की ओर झुकाना अमृत को फेंककर विषपान करना है।

152. प्रभु भक्ति को छोड़कर अन्य-अन्य उपायों द्वारा जो सुख पाना चाहते हैं वे महामूर्ख और बुद्धि के शत्रु हैं।

मूर्खता के लक्षण—

(1) अपने को ज्ञानी समझना और दूसरों के छिद्र ढूंढना।

(2) कथनी और करनी में भेद होना।

(3) अपने मुंह से अपनी प्रशंसा करना।

(4) जो धर्मात्मा पुरुष के साथ अति निकट रहता है पर उपदेश किए जाने पर बुरा मानता है।

(5) जो बिना पूछे बोलता है, ये सब मूर्खता के लक्षण हैं ।

154. किसी के बन जाओ, अर्थात् किसी को अपना रक्षक स्वामी बना लो, पर स्वामी समर्थ को बनाओ, उससे समर्थ हैं भगवान्, बस उनको ही स्वामी बना लो, उनके बन जाओ । भगवान् के बन जाने पर जगत् में कोई उसे सताने, दुःख देने में समर्थ नहीं होता चिन्ता, भय और शोक उसके पास नहीं आते ।

155. जिनको जितनी ही चिन्ता, भय और शोक होता है समझ लो कि वह उतना ही भगवान् का नहीं हुआ । जिसके सिर पर सारे ब्रह्मांडों के स्वामी सर्वशक्तिमान् हों, उसे क्या चिन्ता, भय और शोक हो सकता है ?

156. जब-जब मन में अशान्ति हो, तब-तब समझना चाहिए कि हम भगवान् को भूल गए हैं ।

157. संसार की छोटी-छोटी वस्तुओं में लुभा जाने वाला मनुष्य परमात्मा की प्राप्ति का अधिकारी नहीं हो सकता ।

158. देहाभिमानी मनुष्य ही बिखरे हुए दुःख को चुम्बक के समान अपनी ओर खींच लेता है । यह अपने लिए एक जेलखाना बना लेता है और वही इतना ठोस बन्धन हो जाता है कि मनुष्य घुल-घुलकर मरने लगता है । यदि मनुष्य विचारपूर्वक देखे तो उसके जीवन के दुःख देहाभिमान के आधार पर ही टिके हुए हैं । उनकी निवृत्ति का उपाय यही है कि यह देहाभिमान के खम्भा उखाड़ फेंका जाए ।

159. अपना दुःख अपने मिटाने से ही मिटेगा, इसे कोई दूसरा नहीं मिटा सकता। क्योंकि यह दुःख शरीर के बाहर अथवा ऊपर नहीं होता, भीतर होता है। वहां केवल विचार का रसायन ही अपना प्रभाव डाल सकता है।

160. वर्तमान युग में स्थूल शरीर की अपेक्षा सूक्ष्म शरीर में अधिक रोग देखने में आते हैं। इसका कारण है लोग बाहरी शरीर को जैसा भोजन, वस्त्र, तेल फुलेल द्वारा सजाने-संवारने में लगे रहते हैं, वैसा ध्यान भीतरी शरीर, मन का नहीं करते। बेचारा भूखा नंगा, रूखा-सूखा बिलखता पागल-सा इधर-उधर भटका करता है, वह अल्प धृति, अल्प शक्ति और अल्प प्राण हो गया है। थोड़ी-थोड़ी बात से घबरा जाता है। शरीर में जरा कहीं चोट लग गई, बस दुःखी हो गया, शरीर में फुन्सी हुई और विषैली हो जाने के वहम ने दुःख को सौ गुणा बढ़ा दिया। इसके लिए शारीरिक नहीं मानसिक चिकित्सा ज़रूरी है। यदि हमारा मन अपने शुद्ध स्वरूप में रहे अथवा भगवान् मे लगा रहे, अपनी स्वरूप निष्ठा और प्रभु-विश्वास में दृढ़ रहे तो संसार के दुःखों की गन्ध भी न आवे।

161. जीव का धर्म है साधना और प्रभु का धर्म है कृपा।

162. हृदय के अन्तर्देश में परमात्मा और उसके बाहर के देश में प्रपंच है। दोनों के मध्य में स्थित हृदय जब स्थूल प्रपंच का चिन्तन करता है तब जड़-सा हो जाता है, और दुःखों से घिरा रहता है और जब अन्तःस्थित आनन्दस्वरूप परमात्मा का चिन्तन करता है, तब

आनन्दित हो जाता है। हृदय को प्रपंच की दल-दल से निकाल कर प्रभु की ओर झुकाना ही साधना है।

163. शान्त और आनन्दमय जीवन व्यतीत करने का आधार ईश्वर की असीम शक्ति में विश्वास ही है। संसार का समस्त हाहाकार इसी केन्द्र-बिन्दु से पृथक् हो जाने का कारण मचा हुआ है। ईश्वर में पूर्ण विश्वास करने से ही मनुष्य हार्दिक शान्ति और सच्चे सुख का अनुभव करता है। जीवन की सच्ची समृद्धि प्राप्त करने और जीवन-मरण के दुःखों से छूटने के निमित्त हमें आस्तिक बनकर अपने जीवन का निर्माण करना चाहिए।

164. प्रतिदिन मनुष्य की शक्ति का कुछ न कुछ संचित कोष कम हो रहा है। जीवन राशि लुटी जा रही है। आश्चर्य की बात है कि मनुष्य भविष्य को सुखमय बनाने के लिए कुछ साधना नहीं करते। प्रिय जिज्ञासुओ ! मोह की निद्रा से उठ आइए। देखिए आपकी स्थिति कैसी है इस स्थिति को प्रकाशमय बनाइए, निरन्तर बढ़ते जाइए।

165. दिन रात्रि के चौबीस घण्टों में आप कितना समय आत्म-चिन्तन, प्रभु भजन में व्यतीत करते हैं इस पर विचार कीजिए। प्रातः से सायंकाल तक खाना-पीना सोना,सम्मान, प्रतिष्ठा प्राप्त करना आदि कामों से बचाकर कितना समय आपने परमार्थ साधन के लिए नियत किया है। धन, वैभव, विद्या, बुद्धि, श्री के मद में दूसरों को कितना तुच्छ मानते हैं। किन्तु पानी के बुलबुले के समान

सारहीन जीवन की स्थिति पर तनिक भी विचार नहीं करते। यह कितने आश्चर्य ही बात है।

166. आप कभी भी ऐसा न मान बैठिए कि मुझमें योग्यता नहीं है, मैं निर्बल हूं, आपको अपने आपको हीन कहने का अधिकार नहीं है। ऐसा कहकर आप अपने आत्मस्वरूप का अपमान करते हैं। आपका कल्याण इसी में है कि आपको ईश्वर का पुत्र ही मानते रहें और निरन्तर इस दिव्य भावना को अधिकाधिक जाग्रत करते रहें।

167. जरा-सा क्षुद्र बातों से चिढ़ने, नाक-भौं सिकोड़ने, अपने आपको कोसने, उद्विग्न होने, व्याकुलता तथा परेशानी का अनुभव करने के लिए तुम्हारा जन्म नहीं हुआ है। तुम साक्षात् ईश्वर के पुत्र हो, अपने आपको तुच्छ मानकर स्वयं ही अपना अहित कर रहे हो। यदि अपने को तुच्छ, आशक्त समझोगे तो शनैःशनैः तुम्हारी शक्ति का ह्रास होगा। सच्चिदानन्दस्वरूप प्रभु के पुत्र होते हुए अनन्त शक्तियों के स्वामी बनकर भी तुम निस्तेज और आसक्त बने रहोगे और अपने आपको हीन, नीच, पराधीन मानकर आत्मा का हनन कर दोगे, यह तुम्हारे निर्माण कर्ता ईश्वर को इष्ट न था।

168. इन्द्रिय सुख की अपेक्षा इन्द्रिय निरोध में अधिक सुख है। हम अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं रक्खेंगे और उन्हें स्वतन्त्र इधर-उधर दौड़ाने देंगे, तो मानो जान-बूझकर दुःख सागर में अपने को डालेंगे। इन्द्रियों के विषयों में सुख नहीं है। अमृतत्व का यह सागर.आपके भीतर है। आनन्द का भण्डार आपके अन्दर है। उसमें विचारिएं, मन का चाहा आनन्द मिलेगा।

169. प्रभु विश्वास की कमी ही सारे दुःखों और चिन्ताओं की जड़ है।

170. मृत्यु का भय त्याग दीजिए, जन्म और मृत्यु का सम्बन्ध अन्योन्याश्रित है। जब वहां से बुलावा आएगा चले जाना होगा, उसमें भय की क्या बात ? जगत् के प्रति जितनी मनुष्य की आसक्ति, मोह होगा, मृत्यु में उतना ही कष्ट और भय होगा, इसलिए आसक्ति,मोह कम करते जाइए और सुखी रहिए।

171. संसार की नाना वस्तुओं का मोह आत्मा को बेड़ियों में बांध देता है। छोटी-छोटी वस्तुओं में मनुष्य की मनोवृत्ति संलग्न रहती है, जितना अधिक मोह, उतना ही अधिक बन्धन, उतनी ही अधिक मानसिक अशान्ति। संसार की चमक-दमक में मनुष्य जितना फंसेगा, उतना ही प्रभु से दूर रहेगा।

172. धन की तृष्णा, भोग-विलास की कामना आत्मा के बन्धन हैं। इनमें से प्रत्येक में बंधकर मनुष्य तड़फड़ाया करता है। मोह के यह बंधन मज़बूत जंजीरों में मनुष्य को बांधे रहते हैं। जब-जब इनमें से कोई पदार्थ मनुष्य को खींच कर पुनः पहली अवस्था में ला पटकते है। मनुष्य की मुक्ति कहां और स्वतन्त्रता कैसी ?

168. यदि मनुष्य जरूरत से अधिक संसार में लिप्त हो गया, तो समझो कि उसने आत्म-तत्त्व को खो दिया।

169. जब मनुष्य को यह विश्वास हो जाएगा कि सच्चिदानस्वरूप परमात्मा की अक्षय सत्ता से उसका स्थायी सम्बन्ध है, तब तमोगुण से उत्पन्न समस्त भय, शंकायें नष्ट हो जायेंगी। ज्यों

ही मनुष्य को यह ज्ञान हुआ कि वह परमेश्वर का प्रिय पुत्र है, ईश्वर का अखण्ड, अटूट भण्डार उसके पास है, ज्योंही वह अपने मन में एक अलौकिक शक्ति का तथा आनन्द का अनुभव करने लगेगा ।

170. अनन्त शक्तिशाली परमात्मा से तुम जितना सम्बन्ध स्थिर करोगे, तुम्हें उतनी शक्ति और आनन्द प्राप्त होगा ।

171. अपनी दृष्टि अन्तर्मुखी करो और हृदय में स्थिर परमात्मा के प्रति मुड़ो । ज्यों-ज्यों तुम हृदय में गहरे उतरोगे, त्यों-त्यों ही तुम्हें परमेश्वर की समीपता का आनन्द प्राप्त होगा ।

172. हमारी कितनी भारी भूल है, कितना बड़ा प्रमाद है कि हम परमात्मा के विचार के सामने अपना विचार रखते हैं, मानो वे विचार करना भी नहीं जानते ।

173. भगवान् जब जो जैसे करें, वैसे होने दो, उसी में तुम्हारा परम-कल्याण है । आरम्भ से ही प्रभु की दया पर, अनुग्रह पर अपना सारा का सारा जीवन छोड़ देने वाले का वहां का और यहां का सारा भार भगवान् संभाल लेते हैं । बस एक बात करो, भगवान् की कृपा पर अपने को छोड़ दो । हमारा क्या होगा, कब होगा, कैसे होगा, इस बात की चिन्ता ही छोड़ दो ।

174. प्रभु की प्राप्ति की मनुष्य का चरम और परम उद्देश्य है । उसे भूल कर संसार में आसक्ति रखना, इसमें मोह रखना अमृत को छोड़कर ज़हर पीना है ।

175. जिस वस्तु से हमारा एक दिन बिल्कुल कोई भी सम्बन्ध नहीं रहेगा, उस वस्तु के लिए भगवान् को भूलना कितनी बड़ी

मूर्खता है । पैदा हुए, मर गए । न भगवान् का स्मरण है, न अपने स्वरूप की स्मृति, यह तो मानव जीवन का सर्वथा दुरुपयोग है । असली बात है भगवान् के लिए ही जीवन बिताना ।

176. भय और चिन्ता इसीलिए है कि प्रभु पर विश्वास नहीं, जब एक साधारण सिपाही के साथ होने पर हमारा सारा भय भाग जाता है, फिर जिस क्षण यह विश्वास हो जाए कि सर्वशक्तिमान् भगवान् नित्य निरन्तर हमारे साथ हैं, उसके बाद क्या भय रह सकता है ?

177. भगवान् की कृपा पर विश्वास, आत्मा की अमरता पर विश्वास तथा तीसरी बात अपने प्रारब्ध पर विश्वास । यदि इन तीन बातों पर विश्वास हो तो फिर किसी बात की किसी समय भी चिन्ता नहीं हो सकती ।

178. ध्यान से देखें तो वास्तव में सारी चीजें भगवान् की है । उन पर उन्हीं का अधिकार है । मनुष्य को तो केवल मिथ्या ममत्व त्यागना है । चीजें भगवान् की होकर आपके पास ही रहेंगी । जो पदार्थ अब दुःख देते हैं वे ही भगवान् के बना दिए जाने पर उनमें से ममता निकल जाने पर सुख देने वाले हो जायेंगे, उनकी और आसक्ति ही मनुष्य को दुःख देती है ।

179. जब तक भगवान् की ओर मुख नहीं हो जाता तब तक यथार्थ में सुख एवं सुविधाएं नहीं मिल सकतीं । मनुष्य यही भूल करता है कि सुख और सुविधाएं तो चाहता है भगवान् की तरफ पीठ करके ।

180. पर-निन्दा, पर-चर्चा सुनने में तो बड़ी मीठी लगती है, पर हैं विषभरी बेल, इनसे सर्वथा दूर रहो।

181. स्पष्टवादी बनने के बहाने किसी का जी दुःखाने वाली बात कभी भी मुंह से न निकालो। सरल बनो, बनावट छोड़ो, जीवन में सीधापन लाओ, सन्तोष धारण करो। याद रक्खो भगवान् को सरलता और सन्तोष बहुत प्रिय हैं।

182. लोगों को कुछ भी कहने दो, वे तो कहेंगे ही, अपने कल्याण मार्ग से कभी पैर पीछे मत हटाओ।

183. दोष देखने वाला सदा ही घाटे में रहता है। उसका जीवन ही दोषमय बन जाता है।

184. सच्चा ज्ञान तो वही है जो आचरण में उतर आए, नहीं तो ग्रन्थ के रट लेने से क्या होता है? गधा चन्दन का भार ढोता है पर उसे उसके महत्त्व का कुछ भी पता नहीं होता।

185. ऊपर से मनुष्य जैसी दिखाई दे, उससे कहीं अच्छा अन्दर से होना चाहिए।

186. भगवान् को छोड़कर किसी दूसरे की आशा करना, भरोसा, करना, विश्वास करना पाप है।

187. भय, चिन्ता, विषाद, शोक का प्रधान कारण भगवान् पर अविश्वास है। भगवान् पर विश्वास न होने से और संसार के पदार्थों पर मोह होने से ही भय चिन्ता आदि उत्पन्न होते है।

188. भगवान् का जो कुछ भी विधान है वह हमारे लिए परम मंगलमय है, ऐसा विश्वास हो जाए तो भय रहे ही नहीं। परन्तु हम

तो अपने की बात कराना चाहते हैं इसी से भय चिन्ता आदि में डूबे रहते हैं।

189. यदि प्रभु को ही चाहने लगें, अपनी कामना की दिशा बदल दें, संसार की ओर से मोड़कर उसे प्रभु की ओर कर दें, तो बस हमें वे अपना लेंगे।

190. प्रभु हमें जो कुछ भी देते हैं उसमें हमारी उन्नति, उत्थान होना निश्चित है, परन्तु हम उसे स्वीकार करना नहीं चाहते, जिन्हें प्रभु की सत्ता में विश्वास नहीं, जो प्रभु को नहीं मानते, उनकी बात दूसरी है, परन्तु जो अपने को आस्तिक कहते हैं वे भी अपने मन के प्रतिकूल किसी भी विधान को स्वीकार करना नहीं चाहते। मनचाहा होने पर बड़ी आसानी से झट कहेंगे कि प्रभु की बड़ी कृपा है पर कहीं मन के विरुद्ध हुआ तो उदासी आये बिना नहीं रहती। वास्तव में यह प्रभु की कृपा का अधूरा ही दर्शन है, पूरा दर्शन तो वह है जबकि हमारे लिए कुछ भी प्रतिकूल न रहे।

191. हम पद-पद पर भयभीत होते रहते हैं इसका कारण है भगवान् में अविश्वास, हमें उन पर विश्वास नहीं, इसलिए हम डरते रहते हैं, डर-डर कर दुःखी होते रहते हैं। हाय रे ऐसा हो गया तो फिर क्या होगा? ऐसा न हुआ तो क्या दशा होगी? इस चिन्ताओं के जाल में पड़े रहने के कारण हमारा दुःख बढ़ता रहता है, हम प्रभु की ओर नज़र उठाकर देखते तक नहीं, यदि उनकी ओर देखने लग जाए तो प्रत्येक भय से मुक्त हो जावें, फिर भय कहां और दुःख कहां?

192. प्रभु सर्वदा हमारी बाट देख रहे हैं, हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं कि कब हम बाहर की ओर शान्ति तथा सुख ढूंढना छोड़कर भीतर की तरफ चल पड़ें, उनसे आ मिलें, उनसे मिलकर हमारी जलन शान्त हो जाय, सदा के लिये हमें पूर्ण शान्ति मिल जाय ! पर हम तो, उस ओर जा रहे हैं जिस ओर शान्ति मिलने की बात ही नहीं है । चाहते हैं हम शान्ति-सुख को, हममें से प्रत्येक निरन्तर शान्ति ही ढूंढ रहा है, पर ढूंढ रहा है वहां जहां शान्ति नहीं है । शान्ति सुख कहीं बाहर महीं, हमारे भीतर ही है । किसी भक्त ने कहा—

"बाहर के पट बन्द कर अन्दर के पट खोल ।" तब शान्ति, आनन्द की प्राप्ति होगी ।

193. जब तक चाह है तब तक चिन्ता नहीं मिटती और जब तक चिन्ता नहीं मिटती, तब तक सुख नहीं मिल सकता ।

"चाह गयी चिन्ता मिटी, मनुआ बेपरवाह ।"

194. अभिमानी और लोभी को कभी शान्ति नहीं मिल सकती ।

195. जो मनुष्य अपनी भूखों और कमजोरियों को प्रकट करने से डरता है वह सत्य का पुजारी कभी नहीं बन सकता ।

196. जल में नाव रहे तो कोई हर्ज नहीं, पर नाव में जल नहीं रहना चाहिये । इसी प्रकार साधक संसार में रहे तो कोई हानि नहीं, पर साधक के भीतर संसार नहीं रहना चाहिये ।

197. संसार कच्चा कुआं है इसके किनारे पर सावधानी से खड़े होना चाहिये, तनिक सी असावधानी होते ही कुएं में गिर पड़ोगे, फिर निकलना कठिन हो जायेगा ।

198. जो रास्ता भूलकर भटक रहा है वह तो एक दिन ठीक मार्ग पा लेगा, परन्तु जो अपने स्थान से चला ही नहीं है उसके विषय में क्या कहा जाए ?

199. जितनी प्रयत्न हम भला कहलाने के लिए करते हैं उससे आधा प्रयत्न भी भला बनने के लिए नहीं करते । यह कितने आश्चर्य की बात है ।

200. किसी ने कोई गलती की, आपको उस पर खूब क्रोध आया । आप ज़रा ठंडे दिल से सोचिए कि क्रोध करना क्या एक बड़ी भारी गलती नहीं है ?

201. कामनाओं का दास भी बना रहे और सुख-शान्ति भी प्राप्त कर ले, यह असम्भव है ।

202. यदि आप केवल पांच-चार अनुभूत विचार आत्मसात् कर उनके अनुसार अरने जीवन और चरित्र का निर्माण कर लें तो आप एक पुस्तकालय को कण्ठस्थ करने वाले की अपेक्षा अधिक शिक्षित हो जाएंगे ।

203. अपना केन्द्र अपने से बाहर मत बनाओ, नहीं तो ठोकरें खाते रहोगे । अपना पूर्ण विश्वास अपनी आत्मा में रखो, सदैव अपने केन्द्र में रहो, फिर तुम्हें कोई भी चीज गिरा नहीं सकेगी ।

204. नम्रता का कवच पहन लेने पर आपका कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता । कपास की रुई तलवार से भी नहीं कटती ।

205. हम दूसरों को बड़ी कठोरता से सुधारना चाहते हैं परन्तु अपना सुधार नहीं करते ।

206. मनुष्य को चाहिये कि वह अपना काम देखे, दूसरों के काम में नुकताचीनी न करे ।

207. शत्रु से शत्रुता करना बैर को बड़ाना है, दूर करने का उपाय तो प्रेम है ।

208. मनुष्य-जन्म की सफलता प्रभु दर्शन कर लेने में ही है ।

209. उपासना प्रथम मिलना जुलना बाद में ।

210. जीवन को सादा, सरल और सच्चा बनाओ ।

211. भगवान् में दृढ़ विश्वास, अविचल निश्चय, अटूट आस्था होवे । कोई हजार दलील, दे प्रमाण दे, विचलित न होओ ।

212. साधक का जीवन निराला होना चाहिये, उसका जीवन बाजारी जीवन से श्रेष्ठ होना चाहिये, क्रोधी झगड़ालू, ईर्ष्यालु होवे तो विशेषता क्या हुई ।

213. दाल-भात खाने के लिये मत जीओ, जीवन को मर्यादा में लाओ, और आत्म-दर्शन करके इसे सफल बनाओ ।

214. जो भगवान् को चाहते हैं और वास्तव में चाहते हैं तो उन्हें भगवान् मिल जाते हैं ।

215. जैसे जल में डूबने वाला सारे बल से बचने की कोशिश करता है उसी प्रकार साधक को कोशिश करनी चाहिये ।

216. दुःख केवल उन्हीं के भाग्य में आता है जो शरीर को आत्मा मान बैठते हैं ।

217. यदि सारी आयु भी सत्संग में बितावे, पर सत्संग में सुने उपदेश पर आचरण न करे तो कोरे का कोरा रह जाता है, जैसे गंगा में पत्थर वर्षों पड़े रहने पर भी कोरे ही रहते हैं, एक बूंद भी अन्दर नहीं जाती।

218. वही धीर, बुद्धिमान् और शूरवीर है जो अपने मार्ग से कदम पीछे नहीं हटाता, अपने निश्चय का त्याग नहीं करता, अपनी साधना पर डटा रहता है, क्योंकि एक दिन शरीर तो गिरना है, प्रभु की ओर साधना करता हुआ शरीर छूटेगा तो सद्गति होगी, संसार में आसक्त रहते शरीर छूटा तो फिर गर्भवास।

219. चाहना, कामना, इच्छा तो आप करते हो, रक्षा और से चाहते हो, भला तब कौन ऐसा है जी आपकी रक्षा कर सके। चाहना ही प्रभु के मिलने में प्रतिबंध है।

220. जिज्ञासु को समझना चाहिये कि बड़ी हुई क्रोध आदि वृत्तियों दुराचार में ही शामिल हैं। इसलिये जिंज्ञासु को बड़ा सरल, सच्चा, शान्त स्वभाव का बनने की चेष्टा करनी चाहिये। वह कभी आवेश में न आवे, वह क्रोध को सर्व बुराईयों की जड़ जाने, अपना जीवन मीठा मृदुल बनावे।

221. परनिन्दा और चुगली, ये दो दुर्गुण बहुत बुरे हैं। पराई निन्दा करते रहना, अपने अन्दर दूसरे मनुष्य के दुर्गुणों के संस्कारों को इक्ट्ठा करना ही होता है। निन्दा करने वाले का अपना ही जीवन बिगड़ता है। मनुष्य के अपने अन्दर ही छल-छिद्र हुआ करते हैं।

यदि प्रतिदिन उनकी आलोचना और पश्चाताप किया जाय तो फिर दूसरों के दोष देखने की दृष्टि ही नहीं रहती ।

222. अरे मनुष्य ! चिन्ता को छोड़ दे, निश्चिन्तता का सुख भोग । तेरी कमाई हुई इस चिन्ता को भला बता कि दूसरा कौन छुड़ाने आयेगा ।

223.विचार करो इस्तीफा देना अच्छा है या बरखास्त किया जाना अच्छा । सब बोल उठेंगे, इस्तीफा देना अच्छा । इसी प्रकार याद रक्खो, मृत्यु से पहले सांसारिक वस्तुओं का त्याग नहीं किया, उनसे ममत्व नहीं हटाया, अपने को इस्तीफा देकर अलग नहीं किया, तो जब तुम्हें घर से बरखास्त किया जावेगा सब वस्तुएं तुमसे जबरदस्ती छीनी जावेंगी, उस समय तुम्हें महान् दुःख होगा । इसलिए भला इसी में है कि स्वयं इस्तीफा देने की तैयारी शनै-शनैः करना आरम्भ कर दें ।

224. शरीर पर भीगा हुआ मलमल का कुर्ता चिपक जाता है, तब उसको उतारने में बड़ा कष्ट होता है । परन्तु सूखा हुआ बड़ी आसानी से उतर जाता है, इसी प्रकार इस शरीर और शरीर सम्बन्धी पदार्थों में, व्यक्तियों में आसक्ति हो गई तो शरीर छोड़ते समय अत्यन्त कष्ट होगा और यदि किसी से आसक्ति न की तब मरते समय कोई कष्ट नहीं होगा ।

225. इच्छा के भीतर नाना प्रकार की यातनायें भरी हुई हैं । इच्छा का परित्याग कर देने से ही सुख शान्ति मिलती है ।

226. अस्वस्थ मन अस्वस्थ शरीर से कहीं अधिक शोचनीय है। अस्वस्थ मन से शरीर भी अस्वस्थ हो जाता है। बिगड़ा हुआ शेर इतनी हानि नहीं पहुंचाता जितना बिगड़ा हुआ मन।

227. किसी कल्याणकारी काम को कल के लिये न टालो।

228. यदि हम दुःखी नहीं होना चाहते, तो हमें अपने विचारों को एकदम बदलना होगा।

229. बाहरी चीजें हमें नहीं बांधतीं, हमारे विचार ही हमें बांधते हैं, अथवा मुक्त करते हैं।

230. जब तक आप छोटी-छोटी बातों के लिये अपने जीवन को बितायेंगे, तब तक आप परमानन्द का अनुभव नहीं कर सकते।

231. शंका, दुःख, चिन्ता, भय, क्षोभ का होना नास्तिकता के रूप हैं।

232. यदि मनुष्य शरीर प्राप्त करके-जन्म मरण के चक्कर से छूटने का प्रयत्न नहीं किया, तो उन पक्षियों के समान जो व्याघ की फांसी से छूट कर भी फल आदि के लोभ से उसी वृक्ष पर विहार करते हैं, फिर बन्धन में पड़ जायेंगे।

233. अरे दुःखी जीवो ! यदि तुम जीवन की समस्त चिन्ताओं से, समस्त क्लेशों से पीछा छुड़ना चाहते हो तो भक्ति-रसायन का सेवन करो, इसके समान अमोघ दूसरी औषध नहीं है।

234. जैसे अपवित्र भोजन से अतिथि प्रसन्न नहीं होता, वैसे ही अशुद्ध अन्तःकरण से, निन्दा करने वाली वाणी से स्तुति-प्रार्थना करने पर परमात्मा प्रसन्न नहीं होता। अतिथि मित्र को भोजन परोसी गई

थाली यदि गन्दी हो, तब उस भोजन को मित्र कैसे खायेगा । इसी तरह यदि वाणी दूषित हो, तब भगवान् उससे की गई प्रार्थना कैसे स्वीकार करेगा ।

235. कुछ देर के लिये जब मनुष्य के सम्मुख गोदी में सुख होता है तब उसी की पीठ पर चढ़ा हुआ दुःख दिखाई न देता हो, जो कि किसी समय भी वह दुःख उस सुखी की गोदी में कूद पड़ता है । और सुखी को अचानक दुःख के दर्शन से दुःखी होना पड़ता है ।

236. आपको यदि सुख के पीछे छिपे हुए दुःख के दर्शन न हों रहे हों, तो सुख के अगल-बगल से झांक कर उसे दिख सकते हैं ।

237. कभी भी हताश न होना चाहिए, अटूट धैर्य रखते हुए निरन्तर श्रद्धापूर्क प्रयत्न में लगे रहो, यदि तुम निरुत्साहित होकर उदासीन हो जाओगे तो अपने मार्ग को ही खो दोगे । कारण यह है कि यदि कोई अपनी चिन्ता में अधिक व्यस्त रहता है तो वह अपना ही ध्यान-चिन्तन करता है न कि अपने आराध्य देव का । इसी कारण आराध्य देव के बीच में चिन्ता एक पर्दा बन जाती है । तुम्हें व्यर्थ चिन्ताओं, वेदनाओं से बचते रहने के लिये अपने आराध्य देव परमेश्वर का निरन्तर स्मरण करते रहना चाहिये ।

238. किसी भी परिस्थिति से भयभीत मत होओ, सत्य मार्ग में गम्भीरता के बल से परिस्थितियों का सामना करो । कष्टों के मेघ कैसे भी काले क्यों न हों, परन्तु उसके पीछे पूर्ण प्रकाशमय एकरस परम सत्ता सूर्य की भांति सदा ही विद्यमान है । तुम अंधकार को

देखकर क्यों घबराते है, उसके पीछे ही उसे पार करने पर तुम अपने को आनन्द प्रकाश में पाओगे।

239. अपनी साधना के मार्ग में ऐसे भावों को भूलकर भी मन में स्थान मत दो, जिनसे तुम्हारा अहित होता रहा हो या होने की सम्भावना हो।

240. दूसरों को तुम सदा ही प्रेम, दया एवं क्षमा की दृष्टि से देखो, परन्तु अपने ऊपर संयम की कड़ी दृष्टि रक्खो; तभी तुम उन्नत हो होओगे।

241. बीते हुए दुःखों का, बीती हुई दुर्घटनाओं का स्मरण कभी न करो।

242. तुम्हारे अन्दर शाश्वत शान्ति तो निवास करती है, परन्तु उसका अनुभव तुम्हें बाहरी सुखों की इच्छा में भटकते रहने के कारण नहीं होता।

243. तुम अपने प्रारब्ध को चाहे न पलट सको, परन्तु शुद्ध विवेक-बुद्धि द्वारा सुखद-दुःखद परिस्थितियों में अपने को शान्त, सम रख सकते हो।

244. साधक वही सावधान है जो आगे-पीछे का चिन्तन नहीं करता और वर्तमान का सदुपयोग करता है।

245. परमेश्वर का भजन-स्मरण-ध्यान जब कोई श्रद्धा-प्रेम से करने लगता है तब उसे आगे बढ़ाने के लिये, विवेक-वृद्धि के लिये प्रभु सत्संग सुयोग-सुलभ कर देते हैं।

246. वासनाओं का दास, बुराईयों का वास और अन्त में नाश । काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार रूपी शत्रुओं की मार से दबा हुआ अज्ञानी भवसागर से पार उतरने का प्रयत्न न करके डूबा जा रहा है । यदि पार उतरना चाहे तो फेंक इस बोझ को ।

247. साधक की साधना में यह एक बहुत भारी विघ्न है कि वह अपने अन्तरात्मा में रहना नहीं जानता । उसमें अन्तरात्मा में रहने की संकल्प शक्ति का अभाव होता है । इसलिये जो भी बाह्य प्रकृति की परिस्थिति, सुख-दुःख, हानि-लाभ, आशा-निराशा, काम-क्रोध आदि की धाराएं आती हैं वह उनके साथ मिल जाता है और उस समय के लिये तदाकार हो जाता है । तुम्हें सर्वदा अपने अन्तरात्मा में निवास करने का अभ्यास करना है । अपने आप को इन प्रकृति की धाराओं से पृथक् कर लेना है और ईश्वर की ही एकमात्र चाहना सीखना है ।

248. सच्चा आनन्द तभी मिल सकता है जब मनुष्य लम्बी जीभ वाले कुत्ते के समान अपने लालची मन को सांसारिक विषयों से दूर रखे ।

249. हे जिज्ञासु ! प्रभु के लिए भेंट रूप में आत्म समर्पण कर ।

250. हे मनुष्य ! उस परमात्मा की शरण में जा, जो आत्मिक बल और मोक्ष का दाता है ।

251. परमात्मा अपने प्यारे भक्त को कभी नहीं भूलता ।

252. सच्चा मित्र वही है जो पाप से बचने के लिये सावधान करता रहे ।

253. प्रभु हमें शरीर इसलिये देते हैं कि इससे साधना करके उसके आनन्दमय रूप को प्राप्त करें ।

254. हे जिज्ञासु ! तू उल्लू के समान मोह को छोड़ दो ।

255. कुत्ते जैसे व्यवहार मत्सर से दूर रहो ।

256. भेड़िये के समान क्रोध को त्याग ।

257. चिड़िया के आचरण काम को नष्ट कर ।

258. बाज की चाल मद को छोड़ ।

259. गीध जैसे लोभ के बर्ताव को भी हे आत्मन् ! तू अपनी महान् शक्ति द्वारा इस तरह नषट कर दे, जैसे शिला से मिट्टी की बर्तन टूट-फूट जाता है ।

260. आत्मा की प्यास बड़ी-बड़ी बातों से नहीं बुझती । प्रभु के सान्निध्य में ही मन को शान्ति मिलती है ।

261. सबसे ऊंचा और लाभदायक ज्ञान, अपने को जानना तथा अपनी कमियों का अनुभव करना है ।

262. उपदेश और सलाह देने की अपेक्षा दूसरों से उपदेश सुनना और सलाह लेना अच्छा है ।

263. केवल इच्छामात्र से कुछ नहीं होगा, पुरुषार्थ करना पड़ेगा ।

264. मन के बहकावे में मत आइये

265. अपनी दृष्टि को ईश्वर की ओर मोड़िये ।

266. वीर बनिये, सदा प्रसन्न रहिये ।

267. इन्द्रियों के गुलाम बनकर अपनी स्वतन्त्रता को मत खोइये, इसी जन्म में अपने जन्मसिद्ध अधिकार ईश्वर के सान्निध्य को प्राप्त कर लीजिये ।

268. यदि मनुष्य धनी होकर दानी नहीं, निर्धन होकर सन्तोषी नहीं, विद्वान् हो कर नम्र नहीं, अशिक्षित होकर, मितभाषी नहीं, मानव होकर प्रभु का भक्त नहीं तो निस्सन्देह वह अपने दुर्भाग्य को ही परिपुष्ट कर रहा है ।

269. जिसके जीवन में कोई संयम नहीं, उसका जीवन वायु के झोंकों से चलने वाली बिना पतवार की माव के समान है जो बीच में ही डूबा देगी ।

270. मनुष्य बने हो तो मनुष्यता की रक्षा करो, मानव जीवन परम लक्ष्य परमात्मा को प्राप्त करने की साधना करो, जिससे मानव जीवन सफल हो ।

271. जैसी भी परिस्थिति हो, मन को बिगड़ने मत दो । इस संसार में तो गर्मी सर्दी, आंधी तूफान, सुख-दुःख, अच्छा बुरा चलता रहता है परन्तु कुछ भी हो, तुम अपने मन में मैल न आने दो, इसे चिन्ता और दुःख से ग्रस्त न होने दो ।

272. मानव सब कुछ जानता है यदि नहीं जानता तो अपने आप को नहीं जानता, उसके पास सब कामों के लिये समय है केवल अंपने लिये नहीं ।

273. संसार में जितने भी दुःख हैं सब अपने बनाये हुए हैं ।
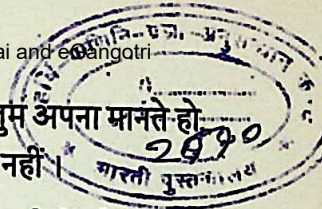
274. जो कुछ भी संसार में पदार्थ हैं जिन्हें तुम अपना मानते हो, ध्यान रखो वे सब तुम्हारे लिये तो हैं पर तुम्हारे नहीं ।

275. सबसे मूल्यवान है समय और मन इन दोनों को निरन्तर सावधानी के साथ परमार्थ साधन में लगाओ, न व्यर्थ खोओ, न प्रमाद करो ।

276. यदि कोई किसी को भगवान के भजन में लगाता है तो वह उसकी परम सेवा करता है क्योंकि इस से उसका भविष्य सुखमय होगा ।

277. धन शरीर निर्वाह के लिये आवश्यक है परन्तु इतना आदर कभी मत दो कि जिससे वह भगवान् के आसन पर अधिकार जमा ले ।

278. होता वही है और होगा वही, जो भाग्यचक्र का निर्माण करने वाले नित्य निर्भ्रान्त परम न्यायशील दया सागर प्रभु ने रच रक्खा है । तुम अपने किसी भी उपाय से न उसे बदल सकते हो, और न उससे बच सकते हो । इसलिये शान्ति से उसे स्वीकार करो ।

279. भगवान् पर दृढ़ विश्वास हुआ या नहीं, इसकी कसौटी है भगवान् के प्रत्येक विधान में सन्तोष है कि नहीं । जब तक उनके किसी भी विधान में विषाद-चिन्ता आती है । तब तक यह स्पष्ट हे कि हमारा भगवान् पर दृढ़ विश्वास नहीं हुआ ।

280. मन और इन्द्रियों की बात का आदर न करके विवेक का आदर करना चाहिए, उसी के अनुरूप अपना जीवन बनाना चाहिए ।

281. मानव प्रत्येक वस्तु के मूल्य को जानता है परन्तु वास्तविक स्वरूप को नहीं जानता ।

282. पदार्थ पास हों, पर उनमें आसक्ति न हो ।

283. कम खाना और कम बोलना कभी हानि नहीं करते ।

284. हमें अपने मन को बीती हुई बातों से दुःखी नहीं करना चाहिए ।

285. बड़े काम करो, परन्तु बड़े वादे न करो ।

286. झूठे वादे से इन्कार अच्छा है ।

287. जीना यदि दिन पूरे करना है तो वह जीवन नहीं, ऐसा तो पशु करते हैं ।

288. जहां चाह है वहां राह निकल ही आती है ।

289. आनन्द का सागर हमारे अन्दर भरा पड़ा है पर हमारी दृष्टि बाहर की ओर लग रही है । हीरों को छोड़कर हम कंकर पत्थर का संग्रह कर रहे हैं ।

290. भोग का पुजारी सदा दीवालिया रहता है ।

291. जिसने जीने का उद्देश्य नहीं समझा उसका जीना वास्तव में जीना नहीं है, वह तो चलता-फिरता एक मुर्दा है ।

292. मन भगवान् के रहने का मन्दिर है, इसे गन्दा मत करो ।

293. अपने दुःख का कारण किसी दूसरे को मत समझो ।

*** इति शम् ***

भजन

नाम सुनते हैं तेरा, रूप दिखाओ तो सही।
सूने मन्दिर में मेरे, ज्योति जगाओ तो सही।।
फूल में गंध, चमक चन्द्र में डाली तूने।
चाह जिनको है तेरी, उनमें समाओ तो सही।।
धूल मल-मल को अलख द्वार पै जोगी गाते।
अपने गाने की कड़ी कोई सुनाओ तो सही।।
चक्र में घूम चुका चरणों में तेरे आया।
दीन वत्सल हो दया दृष्टि दिखाओ तो सही।।

भजन

जगदीश शान्त हृदय को मेरे बनाइये,
प्रभाव अपनी कृपा का मुझको दिखाइये।
हो करके साक्षात् मेरे मन में आइये,
और आके यहाँ से फिर कभी बाहर न जाइये।।
अन्तःकरण को ज्ञान से भरपूर कीजिये
प्रकाश युक्त बुद्धि को मेरी बनाइये।
लीन आपमें रहे, भागा फिरे न मन,
इसके लिए विवेक का पहरा बिठाइये।।
भिक्षा मांगता हूं विनय पूर्वक यह,
कृपा से दान भक्ति का अपनी दिलाइये।
बस आपका ही भरोसा है, हूँ शरण आपकी,
दुःखों से मरने जीने के मुझको छुड़ाइये।।

भजन

जगत् पिता के प्रेम जल से,
यह खेत मन का हरा हुआ।
तो अवश्य होगा कि एक दिन,
यह ही फूल फल से फला हुआ॥
वले चाहिए उपासना में,
न होने पावे तगाफली[१]।
है ओ३म् शब्द के जाप का,
तेरे मन में तार बंधा हुआ॥
ये उपासना का जो बाग है,
सुबह शाम इसकी तू सैर कर।
ये करेगा कुलफत[२] दूर सब,
ये सरूर[३] से है भरा हुआ॥
यहां रहती नित्य बहार है,
यहां से खिजां को फरार है।
जो गुज़र हो इसमें खयाल का,
रहे दिल का गुञ्चा[४] खिला हुआ॥
यहां की फिज़ां[५] है दिलरूबा,[६]
नहीं जिससे दिल हो कभी जुदा।

---

१. प्रमाद २दुःख, ३ प्रसन्नता, ४ कली, ५ बहार, ६ मनोहारिणी

यहां गुल अजब हैं खिले हुए,
यहां मोक्ष फल है लगा हुआ ॥

जो दग़ा फरेब से है अलग,
वही इसमें जाने का मुस्तहक।
नहीं यह नसीब उसे हुआ,
जो विषय में होवे फंसा हुआ ॥
जो हो धर्म युक्त जती सती,
वही पा सके है यहां जगह।
न सताये उसको क्लेश फिर,
रहे सब दुःखों से बचा हुआ ॥
जिसे कोशिशों के ठुफेल[७] से,
जगह इस चमन में अता हुई।
वही जीने मरने की क़ैद से,
बे रोक टोक रिहा हुआ ॥
तेरी खुशनसीबी है केवला,
तेरा इस तरफ को जी मन चला।
जरा जल्दी जल्दी कदम उठा,
दरे बाग है वह खुला हुआ ॥

---

७. बरकत

भजन

अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में,
है जीत तुम्हारे हाथों में, है हार तुम्हारे हाथों में।
मेरा निश्चय है एक यहीं इक बार तुम्हें पा जाऊँ मैं,
अर्पण कर दूं जगती भर का सब प्यार तुम्हारे हाथों में।
अब सौंप दिया — — — — —

या तो मैं जग से दूर रहूँ या जग में रहूँ तो ऐसे रहूँ,
इस पार तुम्हारे हाथों में, उस पार तुम्हारे हाथों में।
अब सौंप दिया — — — — —

यदि मानुष ही मुझे जन्म मिले, तब चरणों का पुजारी बनूँ,
मुझ पूजक की इक रग-रग का हो तार तुम्हारे हाथों में
अब सौंप दिया — — — — —

जब-जब संसार का बन्दी बन, दरबार में तेरे आऊँ मैं,
हो मेरे पापों का निर्णय, सरकार तुम्हारे हाथों में
अब सौंप दिया — — — — —

मुझ में तुझ में भेद यही, मैं नर हूँ तू नारायण है,
मैं हूँ संसार के हाथों में, संसार तुम्हारे हाथों में।
अब सौंप दिया — — — — —

मुद्रक :
अमर प्रिंटिंग प्रेस, विजय नगर, दिल्ली-110009, दूरभाष : 7252362